संपादकीय

जातिवाद के खात्मे का फार्मूला : रोटी-बेटी का संबंध

आजकल संबंधों की नजदीकी को जब पुख्ता करना होता है, तो रोटी-बेटी का संबंध स्थापित करने के लिए कहा-सोचा जाता है या रोटी-बेटी पर आधारित पुराने संबंधों का गरिमागान किया जाता है। और-तो-और, नेपाल जैसे पड़ोसी देश से जब सनातनी संबंधों की याद दिलानी होती है, वह भी राजनयिक (डिप्लोमेटिक) मंच से, तब भी सरकार की ओर से रोटी-बेटी के रिश्तों की दुहाई दी जाती है। 'संबंधों में गहराई' का ही नहीं, 'संबंधों की मजबूती' को दर्शाने का यह रूढ़ मंत्र बनता जा रहा है और इसीलिए इसे जातिवाद, संप्रदायवाद के भी उन्मूलन-उच्छेदन का कारगर अस्त्र बनाने के लिए तर्क दिया जाने लगा है। सर्वप्रथम यह विचारणीय है कि 'रोटी-बेटी का संबंध' कहने-सुनने में कैसा लगता है? आकर्षक लगता है या भद्दा-वीभत्स? जाहिर है कि ऐसा कहना-सुनना अपनी-अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि से जनित संस्कारों, सामाजिक सरोकारों, शिक्षा के दायरे और मानसिकता की संकीर्णता-विस्तीर्णता के कारण अच्छा या बुरा लग सकता है। इतना ही नहीं, इसे नकारने या स्वीकारने में अहंवादी सोच का एकल प्रभाव जाने-अनजाने परिलक्षित हो सकता है। यह अहं व्यक्तिगत, जातीय, ओहदे और मानसिकता का अलग-अलग या मिला-जुला रूप हो सकता है। 'अहं' अपनी अतिशयता में दीनता-हीनता का प्रतिरूप है, जिसे भलीभाँति समझना आवश्यक है।

रोटी-बेटी के संबंध का तात्पर्य समाज में किसी व्यक्ति या समूह के साथ खाना-पीने और बेटा-बेटी के विवाह करने की व्यवस्था से है, यानी बेहिचक खाने-खिलाने और बेटियों के आदान-प्रदान करने की स्थिति से है। नि:संदेह कन्या ही किसी भी परिणय की आधारभूत कड़ी है। एक तरफ उसे दिया जाता है तो दूसरी तरफ उसे ही ग्रहण किया जाता है, किंतु ऐसे आदान-प्रदान में कन्या किसी वस्तु से अधिक नहीं लगती, उसकी अपनी भूमिका के लिए कोई जगह नहीं दिखती। जिन शादियों में उसकी भूमिका अग्रणी होती है, वहाँ परिवार की भूमिका निर्णायक नहीं रहती, हालाँकि कन्या और उसके परिजनों में आपसी तालमेल से जो शादी संपन्न होती है, वह सर्वोत्कृष्ट है। इसमें शक नहीं कि आहार व विवाह परिवार और समाज के अस्तित्व के लिए धुरी हैं, भले मनुष्यता का विकास इन्हीं तक सिमटकर नहीं हो सकता, लेकिन जो बुनियादी आवश्यकताओं पर जीवन जीने के अभ्यस्त बन गए हैं, उनके लिए यह बहुत कुछ है।

विश्व भर में राष्ट्र-राज्य के बीच सीमाओं के भीतर भाषा-बोली, नस्ल-जाति, धर्म-संप्रदाय जैसी अनंत परिसीमाएँ बनी हुई हैं। यह प्राकृतिक इतिहास की सतत प्रक्रिया का अंग है कि जहाँ रेखाएँ हैं, वहाँ उन्हें मिटाने का प्रयास चलता है और जहाँ नहीं हैं, वहाँ बनाने के लिए दीवार खड़ी की जाती है। यह आदमी का नैसर्गिक स्वभाव है। जब बनाई जाती हैं, तब प्रगतिशील सोच के कारण और सुव्यवस्था के लिए, पर धीरे-धीरे ये पुरातनपंथ की निशानी बन जाती हैं, खुद अव्यवस्था-अराजकता का शिकार हो जाती हैं और इनके खिलाफ भी आवाज उठने लगती है। एक व्यवहार या नियम बनता है, फिर टूटता है, फिर परिवर्तित होकर बनता है। जरूरी नहीं कि जो नया है, वह विकासशील हो ही, यदि है भी तो भी उसकी उपयोगिता की समय-सीमा इतिहास में निश्चित हो जाती है। किसी फैशन, ट्रेंड और मांग के साथ भी यही होता है। सवाल यह है कि जाति और धर्म की दीवार से मुक्त होने के लिए रोटी और बेटी का संबंध स्थापित करना कारगर ढंग से संभव हो सकता है? इसे परंपरागत समाज द्वारा सामान्यतः अच्छा नहीं माना जाता, लेकिन 'अमान्य' तरीके से दूसरे धर्म, जाति-नस्ल की बहू-बेटियों का शोषण करने से लेकर अपने तुच्छ स्वार्थों व जातीय अहं की तुष्टि के लिए इस्तेमाल करने या प्रताड़ित करने से कम ही लोग परहेज रखते हैं। यहाँ न जाति की संकीर्णता आड़े आती है और न जाति की श्रेष्ठता-उदारता। परिपक्व निर्णय के अंतर्गत अपनी जाति या धर्म के भीतर या बाहर शादी रचाने का मामला अलग है और प्रशंसनीय भी, पर जिन शादियों में दैहिक लगाव, धन-पद की चाह, राजनीतिक लाभ के साथ अपरिपक्व प्रेम की विकृति विद्यमान रहती है, उनमें ऊपरी स्तर पर जाति की बंदिशें टूटती दर्शित होती हैं, पर भीतर से जातीय अहं की क्षुद्र मानसिकता को तुष्ट करने का निम्न प्रयास होता है। सामाजिक बदलाव ऊपरी तौर पर होते हैं, राजनीति भी प्रायः इनसे ही चलती है। यह भी मानना पड़ेगा कि बाहरी कलेवर का कुछ प्रभाव भीतरी बुनावटों पर पड़ता है, लेकिन इस तरह का सामाजिक और राजनीतिक बदलाव एक तरह का पाखंडवाद भी निर्मित करता है।

जिस प्रकार जाति के भीतर शादी के लिए बाध्य करना अव्यावहारिक और असंवैधानिक है, उसी तरह जाति के बाहर अंतरजातीय शादी के लिए बाध्य करना असंवैधानिक और नागरिक स्वतंत्रता हनन है। इसके लिए किसी तरह का प्रलोभन अनैतिक है, जैसा कि किया जाता रहा है। जाति और संप्रदाय एक सामाजिक सच्चाई है, जिसके दो रूप हैं, एक दर्शन-सिद्धांत का और दूसरा व्यवहार का, पर दुर्भाग्य से दोनों में बहुत पार्थक्य है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा बनाए गए हैं - 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।' यदि उन्होंने वर्णों का निर्माण किया तो उनके बीच भेदभाव के उत्तरदायी भी वही सिद्ध नहीं हुए? किसी भी संस्था को चलाने के लिए अनेकानेक कार्य करने की जरूरत होती है, ठीक वैसे ही प्रकृति या लोक समाज को चलने के लिए बहुआयामी कार्य अपेक्षित था। स्रष्टा ने तब मुख्य रूप से चार कार्यों का विधानपूर्ण विभाजन किया - पठन-पाठन का दायित्व, शासन व समाज की रक्षा की जिम्मेवारी, व्यापार-व्यवसाय और सेवा के कार्य। इन कार्यों को करने के लिए स्वैच्छिक रूप से लोग तैयार हुए और फिर उनकी टोली बनती गई। इस पूरी प्रक्रिया में कोई कार्य व्यक्ति-विशेष या समाज-विशेष के लिए बाध्यकारी नहीं था, सब कुछ स्वैच्छिक था। यह सही है कि जो जिस माहौल में लंबे काल तक रहता है, वह उसी में सुविधाजनक महसूस करता है, उसी के अनुरूप विचार-व्यवहार और संस्कार में वह दक्ष बनता है। आज भी लोग अपनी क्षमता-योग्यता, रुचि व जरूरत-मज़बूरी के लिहाज से काम खोजते हैं, नौकरी-व्यवसाय करते हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि छोटे लोग बड़े लोगों के काम तय नहीं करते; बड़े लोग अपना और अपने से नीचे वालों के कार्य तय करते हैं। जिसका सार्वभौम राजा जैसा व्यापक प्रभाव हो, वही तरह का विधान बना सकता है। ऐसी व्यवस्था पूरे विश्व में है। वर्णाश्रम व्यवस्था अपने समय की प्रगतिशील, सुव्यवस्थित एवं लोकतांत्रिक सोच थी। दिक्कत तब से पैदा हुई, जब से इसे बाध्यकारी बना दिया, जबरदस्ती किसी पर लाद दिया। यह इसके मूल उद्देश्यों के विरुद्ध था।

बहरहाल, बात बेटी-रोटी की है, आज भी यही देखने में आता है कि लोग अपने-अपने स्तर के अनुरूप ही विवाह संबंध करते है, दबी इच्छा होती है कि वर या वधू तथा उसके परिवार वाले श्रेष्ठ, धनवान, कुलीन हों। इस प्रकार रिश्ता ज्यादातर बराबर वालों में होती है, चाहे वह जाति-धर्म के भीतर हो या बाहर। खाना खाने जाते समय अपनी हैसियत के हिसाब से ही होटल की साफ-सफाई से लेकर बाकी चीजों का ध्यान रखा जाता है। रोटी-बेटी का संबंध जहाँ स्थापित हो भी रहा है, वहाँ भी कोई सुक्रांति नहीं हो रही। वास्तव में इन दोनों से परे हम जहाँ, जैसे हैं, जिस किसी पद-स्थिति में हैं, उसमें किसी से विशेष राग या द्वेष संप्रदाय, नस्ल या जाति के आधार पर न करें; बाह्य स्तर पर ही नहीं, आंतरिक-आत्मिक स्तर पर भी। जहाँ कहीं मन में ऐसा भाव आए, वहाँ अपनी शिक्षा, संस्कृति, धर्म और ईमान पर आत्मनिरीक्षण कर लेना चाहिए, क्योंकि यह आप के धर्माधीश होने, राजनेता होने या मनुष्य होने पर खोंट दर्शाता है, यह सीधा व सच्चा प्रश्नचिन्ह है। हाल ही में एक प्रसिद्ध अभिनेत्री ने बयान दिया कि बिना सेक्स के आप किसी पुरुष के ज्यादा नजदीक नहीं हो सकते। यह अभिनेत्री का अपना अनुभव, सोच व संस्कार है, परंतु लगता है कि सेक्स से परे या अलग आप किसी पुरुष या स्त्री के जितने करीब हैं, वही अलैंगिक संबंध आपके और उनके बीच का वास्तविक रिश्ता है। इसी प्रकार रोटी-बेटी से परे आप किसी से कितनी अच्छाई से पेश आते हैं, इसी में आपका बड़प्पन, सहिष्णुता और मानवीयता की गहराई का पता चलता है। इसी से समानता की नींव पक्की होती है।